अध्याय पहला

भगवतीचरण वर्मा - जीवन वृत्तांत

पहला - अध्याय

भगवतीचरण वर्मा : जीवन वृत्तांत

यह सत्य है कि किसी भी साहित्यकार के कृतित्वपर उसके व्यक्तिगत जीवनानुभूति की गहरी छाप रहती है। वह अपने आपको दूर रखकर साहित्य-सृजन नहीं कर सकता। वह किन संस्कारों से प्रेरित होकर एवं परिस्थितियों से सामना करते हुए, साहित्य-सृजन किया है। इस जानकारी के लिए उसके व्यक्तिगत जीवन, स्वभाव, समष्टिगत चेतनाओं - जिसमें उसका विकास होता है, यह जानना बहुत ही आवश्यक है।

आरंभीक जीवन तथा पारिवारिक स्थिति —

हिन्दी साहित्याकाश के बहुमुखी प्रतिभा के धनी भगवतीचरण वर्माजी का जन्म ३० अगस्त १९०३ ई. के बीच, जेष्ठ नक्षत्र, जिला उन्नाव की शफीपुर तहसील में, बाबू देवीचरण वर्मा के अग्रज पुत्र के रुप में हुआ। पिता देवीचरण वकील थे। उनका परिवार एक संपन्न कायस्थ परिवार था। उनके पितामह दो-तीन गांव के जमींदार थे। उनकी दो पत्नियाँ थी। इनके सन्तानों के बीच जायदाद का बँटवारा हो जाने से बाबू देवीचरण आजीविका की खोज में उन्नाव जिले के शफीपुर गांव में बस गए थे। बीसवीं शताब्दी का प्रारंभिक भारत अंग्रेजों के संपर्क से हरक्षेत्र में नवीन चेतना से आक्रान्त था। विशेषत: अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क से मध्यमवर्गीय जीवन में तेजीसे परिवर्तन आ रहा था। जमींदार - ताल्लुकेदार अपनी विलासी -

प्रवृत्तिके कारण पतित हो रहे थे। ऐसे ही में पूंजीवाद का विकास गांवोंमें भी तेजी से हो रहा था। इसी समय कुछ दिनों के बाद ही बाबू देवीचरण अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने के हेतु पुन: कानपुर आकर रहेन लगे।

कानपुर के पटकापुर मुहल्ले में भगवतीबाबू का बचपन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के बीच बितने लगा। वे खेल-कूद में प्रवीण थे। और उनका गला भी सुरीला था। उनको गाते सुनकर आस-पास के लोग इकट्ठा हो जाते थे। स्वयं उन्होंने लिखा है " बचपन में मुझे संगीत का शौक था, मेरा कण्ठ सुरीला था ..... अपने मोहल्ले की रामलीला में मैं सस्वर रामायण पाठ करता था। "[१] परंतु सुख के ये दिन अधिक दिन नहीं रह पाये। पांच वर्ष की अल्पायु में ही वर्माजी पितृहिन हो गये। सन १९०८ ई. के प्लेग की महामारी में बाबू देवीचरण का देहान्त हो गया। और वर्माजी के परिवार पर पहाड टूट पडा। पिता के मृत्यु के बाद अपने परिवार के साथ अपने ताऊ श्री प्रयागदत्त के यहाँ रहने लगे। ताऊजीने वर्माजी के पिता के नाम की जमीन जायदाद बेंचकर रुपये बैंक में जमा कर दिया और इनके बदले जो ब्याज केवल २२ रुपए प्रतिमाह मिलता था। वही उनके परिवार के आजीविका का एक मात्र साधन बन गया।

ऐसेही में भगवतीबाबू ने कानपुर के थियासॉफिकल स्कूल से सातवी की कक्षा पास कर ली। जब स्कूल की पढाई शुरु हुई तब वर्माजीने अपने प्रतिभाशाली मस्तिष्क का परिचय दिया। प्रारंभ में वे बडे तेज रहे थे। चौथी कक्षा में उन्हें डब्बल प्रमोशन मिला था। मात्र आगे आर्थिक संकट बराबर बने रहने के कारण एकाग्र होकर पढ न पाये। शिक्षा के साथ साथ वर्माजी को घरेलु कार्य भी करना पडता था। कापी-किताब खरिदने के लिए भी पैसे न मिल पाते। इसके साथ ही साथ मुहल्ले में होनेवाले सांस्कृतिक और आर्थिक उत्सवों में भी जाना पडता था। क्योंकि सभ्रांत परिवार के बालक और आदरणीय व्यक्ति

---

१ सविनय और एक नाराज कविता (भूमिका) - पृ.सं.९

के भतिजे जो थे। शायद इसीकारण सातवी कक्षा में पास जरुर हुए, मात्र हिन्दी में फेल हुए। पाँचवी तथा छठी कक्षा में क्रमश: प्रथम और द्वितीय आने की परंपरा खण्डित हुई। इसके बाद अव्वल स्थान प्राप्त करने को बात तो दूर ही रही, पास होना भी मुश्किल बन गया। साथ ही पारिवारिक जिम्मेदारी बढती जा रही थी, तो भी स्कूल जाया करते थे।

सातवी कक्षा में फेल होने के कारण उन्हें शर्मिन्दा होने पडा। मात्र आगेचलकर वर्माजी को यह लाभान्वित ही हुआ। स्वयं वर्माजीने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है " जब मैं सातवें दर्जे में पढता था, तब हिन्दी में फेल हो जाने के कारण मेरे अध्यापक श्री जगमोहन ' विकसित ' ने मुझे शर्मिन्दा करते हुए हिन्दी सुधारने के लिए श्री मैथिलीशरण गुप्त की ' भारत - भारती ' आदि कविता पुस्तकें तथा ' सरस्वती ' नाम की मासिक-पत्रिका पढते रहने की सलाह दी थी। और इस सलाह के पुछल्ले की तरह सलाह दी थी, कि लायब्ररी से ' भारती-भारती ' ले जाऊँ .... फलत: घर में गा-गाकर ' भारत-भारती ' पढनी आरंभ की। भाषा सुस्पष्ट, कहीं किसी तरह का घुमाव-फिराव नहीं, भावना देश-प्रेम की, और तुकें बडी साफ। बरसात के दिन थे, घटा घिर रही थी, रिमझिम-रिमझिम बूँदें पड रही थी, तो ' भारत-भारती ' पढते पढते मेरे हृदय में उमंगों का सागर लहराने लगा। मैंने कागज-पैंसिल उठायी, ' भारत-भारत ' के छन्द में देश-प्रेम पर मैंने सात-आठ पंक्तियाँ लिख डाली। दुसरे दिन मैंने ' विकसित ' जी को, जो स्वयं कवि थे, अपनी वह कविता दिखायी। उन्होंने मुझे मात्रा गिनने की प्रक्रिया बतलायी, छन्दों का ज्ञान कराया। कविता का प्रथम पाठ और साथ ही अन्तिम पाठ। तो मैं कवि बन गया। " [१]

इस घटना के बाद वर्माजी कोर्स की पुस्तकों के अतिरिक्त अध्ययन करने में

---

१ अतीत के गर्त से - (संस्मरण) - पृ. सं. ६३-६४

दिलचस्पी लेने लगे। किन्तु पारिवारिक विषमता का बाढ अभी समाप्त नहीं हुआ था। अब तो उनका छोटा भाई भी स्कूल जाने लगा था। और अब भी वही आय प्रतिमाह २२ रुपए। ` पारिवारिक विषमता के विष को यह हिन्दी का भोला-भण्डारी काव्यानंद में निमज्जित होकर पीने लगा। अन्तर्चेतना में बैठे हुए कलाकार की प्रतिभा जाग उठी और वह नये लोक में अपने कृतिकार को लोरियों की लोल लहरों में थपकियाँ दे-दे जीवन के अनबुझे राग सुनाने लगी।`[1] ऐसे ही में वर्माजी ने थियासॉफिकल स्कूल से आठवी कक्षा उत्तीर्ण कर क्राईस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर में प्रवेश लिया। तब तक प्रथम महायुध्द समाप्त हो चुका था। अंग्रेजों ने सन १९१९ ई. के लगभग दमनकारी नीति का प्रयोग किया। फलस्वरुप राष्ट्रीय चेतना की गती तुफान से भी तेज हो उठी। वर्माजी का कवि-हृदय इससे चुप कैसे बैठ पाता। उन्होंने भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर देशभक्ति, त्याग, बलिदान की कविता लिखी, जो ` प्रताप ` नामक पत्रिका से प्रकाशित भी हुई थी। भगवतीबाबू के जीवन के यही महत्वपूर्ण दिन हैं। ` प्रताप ` उस समय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की लोकप्रिय पत्रिका थी। अपनी कविता को ` प्रताप ` से छपवाने के सिलसिले में वर्माजी का साक्षात्कार श्री गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ। आगे चलकर जैसे ही संपर्क बढता गया, वैसे ही मैत्रीभाव भी आता रहा। गणेशशंकर विद्यार्थी के प्रोत्साहन से उनदिनों कानपुर में हिन्दी साहित्य की एक नवीन धारा का अविर्भाव हो रहा था। यहीं भगवतीबाबू का परिचय विश्वंभरनाथ शर्मा ` कौशिक `, बालकृष्ण शर्मा ` नवीन ` श्री रमाशंकर अवस्थी, चंद्रिका प्रसाद आदि से हुआ, जो आगेचलकर मैत्रीभाव में परिवर्तित हुआ। वे सब अपने को ` प्रताप - परिवार ` के सदस्य समझते थे। इन सब के मानस गुरु थे - गणेश शंकर विद्यार्थी। उन्हींसे प्रभावित होकर वर्माजी ने विक्टर ह्यूगो के उपन्यास पढ लिये थे। स्वयं वर्माजी का कथन है -- ` मैंने विक्टर ह्यूगो के उपन्यास उस कच्ची उम्र में ही पढ डाले थे।`[2]

---

१ डॉ. बैजनाप्रसाद शुक्ल : भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना - -- पृ.सं.२८

२ अतीत के गर्त से - पृ.सं.१२

सन १९२१-२२ में गणेश शंकर विद्यार्थी के प्रभाव से ही वर्माजी ने कार्लमार्क्स, मेक्सीनी एवं फ्रांस की राज्यक्रांति के प्रमुख व्यक्तियों पर लेख लिख डाले थे। जो उन दिनों 'प्रभा' मासिक पत्र में छपे थे। भगवतीबाबू अपने पर श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रभाव स्वीकार करते हुए लिखते हैं-'यदि मैं बाल्य-काल में ही गणेश शंकर विद्यार्थी के संपर्क में न आ गया होता तो मैं कोई दुसरा ही व्यक्ति होता। मेरे निर्माण में उनका बहुत बडा प्रभाव रहा है, मेरे अनजाने ही।' [१]

सन १९२१ ई. में भगवतीबाबू ने क्राइस्ट चर्च कॉलेज से हाईस्कूल पास किया और इंटरमिडियट के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया। अब वे केवल विद्यार्थी न होकर 'प्रभा', 'शारदा', पत्र-पत्रिकाओं के लेखक तथा कवि के रुप में ख्यातनाम होने लगे। इंटर में वे फिर फेल रहे। इसी वर्ष उनका विवाह उमा से हुआ। मात्र इस साल फेल होने का कारण था - कानपुर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन। इस साहित्य सम्मेलन में 'कौशिक' जी की प्रेरणा से नवयुवक कवि वर्माजी ने काव्य पाठन किया। जिससे उनकी ख्याति हिन्दी साहित्याकाश में गूंज उठी। वर्माजी का परिचय कतिपय कवियों के साथ ही अनेक साहित्यकारोंसे हुआ। जिनमें मुंशी प्रेमचंद और 'अभ्युदय' पत्र के संपादक श्री कृष्णकान्त मालवीय के नाम प्रमुख है। इसके बाद वर्माजी हिन्दी साहित्य जगत् में कवि के रुप में प्रतिष्ठापित हुए। सन १९२४ में उन्होंने इंटर की परीक्षा पास करके स्नातक उपाधि के हेतु इलाहाबाद युनिव्हर्सिटी में दाखिल हुए। परंतु वे कानपुर के एक महामानव को कदापि भूल न पाये। 'मैं श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का शिष्य नहीं रहा, मैं उनका अनुयायी न बन सका। लेकिन उन्होंने मेरे जीवन में मेरे अनजाने ही एक अमिट छाप छोड दी, यह मैं स्वीकार करता हूँ। मैं एक अजीब अराजक किस्म का आदमी मैंने हमेशा उनका आदर किया। शायद इतना आदर मैंने और किसीका नहीं किया अपने जीवन में।[२]

---

१ अतीत के गर्त से - पृ.सं. ६४

२ वर्माजी से व्यक्तिगत वार्तालाप - भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना - पृ.३० (डॉ वैजनाथ प्रसाद शुक्ल)

सन १९२६ में उन्होंने बी.ए. पास कर लिया । और एम.ए. हिन्दी में प्रवेश लिया। एम.ए. के प्रथम वर्ष में प्रथमश्रेणी में पास हो गए थे। शायद उन्हें डर हुआ होगा कि, यदि एम.ए. द्वितीय वर्ष में भी प्रथमश्रेणी मिल जाय तो प्रोफेसरी करके अपनी आर्थिक स्थिति को संभलना न पडे। चूंकि वर्माजी नौकरी करना नहीं चाहते थे। नौकरी करना उनके प्रवृत्ति में नहीं था। अत: एम.ए. न करके उन्होंने वकालत पास करने का निश्चय किया और सन १९२८ ई. में वकालत की परीक्षा पास कर ली। भगवतीबाबू वकील बन गए । तो भी आर्थिक संघर्ष बराबर बना ही रहा।

संघर्षमय जीवन तथा साहित्य-सृजन --

भगवतीबाबूजी का जीवन संघर्षों की कहानी है। विषम परिस्थितियों में मस्त रहकर भी इस कलाकार ने साहित्य सृजन का कार्य बराबर जारी रखा था। आरंभ से ही आजीविका के लिए उन्हें भयानक संघर्ष करना पडा। फिर भी साहित्य का क्षेत्र छूटा नहीं। उन्होंने स्वयं लिखा है " बचपन में मैं कुशाग्र बुध्दि का बालक समझा जाता था। कक्षा में प्रथम या दुसरा स्थान मिलता था मुझे। जब मैं पांच वर्ष का भी पूरा नहीं हुआ था, तब मेरे पिता की मृत्यु हो गयी थी। अपने सौतेले ताऊ की देख-रेख में बढ रहा था। वह एक मारवाडी फर्म के करिन्दे थे। मेरे सगे ताऊ डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स जरूर थे, लेकिन रईस तबीयत के मौज-मजे में डूबे हुए, सब के सब मेरे प्रति उदासीन, केवल मेरी विधवा माँ को यह चिन्ता थी, कि मैं बडा आदमी बनूं। उन दिनों बडे आदमियों में समझे जाते थे, ऊँचे अफसर, वकील या डॉक्टर।.... स्पष्ट रुपसे तो मेरे मन में अभिलाषा एक बडे अफसर बनने की थी, लेकिन अस्पष्ट रुपसे मैं साहित्य-कला-देशभक्ति की ओर प्रवृत्त होता जा रहा था। सन १९२० में मेरे सगे ताऊ का देहान्त हो गया और मैं अपने परिवार का सबसे बडा पुरुष सदस्य रह गया। मेरी ताई, उनके तीन बच्चे - उम्रमें मुझसे छोटे, मेरी माता, मेरा छोटा भाई और सत्रह साल का मैं। समस्त परिवार की जिम्मेदारी मुझे जबर्दस्ती ओढनी पडी। मध्यम वर्ग

की निष्ठाएँ और मान्यताएँ अपने सिर पर लादे हुए मैं अफसरी या वकालत के लिए ही पढने लिखने लगा। लेकिन कविता और साहित्य का क्षेत्र मुझसे छूट नहीं सका।`[१]

कानपुर में ही भगवतीबाबूजी ने अपने पिताजी के ज्युनिअर वकील बाबू मुन्नुलाल के निर्देशन में वकालत आरंभ कर दी। परंतु आर्थिक संघर्षों, स्वास्थ्य शैथिल्य और सृजनात्मक प्रतिभा के जोश में इस पेशे में वे असफल ही रहे। अब तो उनकी निजी समस्याएँ ही इतनी बढ गयी थी कि मानो विपत्ति का पहाड ही सिर पर था। वकालत में असफलता के साथ साथ पत्नि की बिमारी बढती जा रही थी। अत: एक साल बाद ही कानपुर से अपने ननिहाल हमीरपुर आए, अपने पूरे परिवार के साथ वकालत जमाने के लिए। सन १९३१ में भदरी राजासाहब के निमंत्रण पर वे वकालत करने प्रतापगढ आ गए। राजासाहब और वर्माजी ने प्रकाशन संस्था की योजना बना ली। पर किसी कारण वश प्रकाशन संस्था की योजना ठप्प हो गई तो भगवतीबाबू का स्वाभीमानी हृदय बिना काम किये राजासाहब के आश्रय में रहना पसंद नहीं किया और वे इलाहाबाद वापस आ गये। सन १९३३ ई. में पत्नि उमा का स्वर्गवास हो गया। आर्थिक संकट में अब भी कोई कमी नहीं आयी थी। सन १९३४ ई. में नंदिता से वर्माजीने दुसरा विवाह किया। सृजनात्मक दृष्टिसे यह काल विशेष महत्व का रहा। कतिपय कविताएँ और कहानियाँ लिखी। जिससे उनकी ख्याति हिन्दी साहित्य जगत् में होने लगी। अब तक सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी `निराला` के नाम छायावादी कवि के रुप में प्रस्थापित हो चुकी थी। और भगवतीबाबू की गणना छायावादी वर्मात्रयी या लघुत्रयी में होने लगी। `श्रीमती महादेवी वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा के साथ जब श्री भगवतीचरण वर्मा (यानी मेरे) के नामों की घोषणा डा. रामकुमार वर्मा ने वर्मात्रयी यानी लघुत्रयी के रुप में की।`[१] सन १९३५

---

१ भगवतीचरण वर्मा - अतीत के गर्त से - पृ.सं.१०९

ई. में वर्माजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मैंत्री निर्वाचित हुए । " परंतु कविता - कवि-सम्मेलनों के सिवाय आजीविका की समस्या हल नहीं कर सकती थी । आजीविका की समस्या गद्य-लेखन व्दारा ही हल की की जा सकती थी । इसलिए वर्माजी ने गद्य-लेखन प्रारंभ किया । " [१] वर्माजी को बचपन से ही उपन्यास पढनेका शौक रहा था । जीवन संघर्षो से जुझते रहने से प्राप्त स्वानुभूतियों के लिए उपन्यास विधा से बढकर दुसरा सशक्त माध्यम क्या हो सकता ? अत; वर्माजीने उपन्यास माध्यम को अपना लिया और अपेक्षित सफलता भी पायी ।

सन १९२८ ई. में वर्माजी का पहला उपन्यास ' पतन ' प्रकाशित हुआ । हिन्दी का प्रसिध्द उपन्यास ' चित्रलेखा ' का प्रारंभ वर्माजीने अपने ननिहाल हमीरपुर में ही किया था - सन १९३४ में साहित्य भवन, प्रयाग से प्रकाशित हुई । ' चित्रलेखा ' का प्रेरणा स्त्रोत तत्कालिन पाप-पुण्य की शाश्वत समस्या तथा अनातोले फ्रांस का ' थॉया ' उपन्यास है । प्रतापगढ के वास्तव्य में मदरी राजकिय पुस्तकालय का कोना-कोना छान डाला यहीं वर्माजी ने मोंपासा और चेखव की सभी कहानियाँ पढ ली थी । सन १९३६ में वर्माजी का तिसरा उपन्यास ' तीन वर्ष ' प्रकाशित हुआ । जिसमें वर्माजीने इलाहाबाद में व्यतीत किये गए अपने विधार्थी जीवन को काल्पनिक पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है । इसके बाद प्रथम कहानी संग्रह ' इंस्टालमेन्ट ' , ' दो बाँके और प्रेम - संगीत ' नामक काव्यसंग्रह आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई । इन्हीं दिनों भी वर्माजी आर्थिक संघर्षों से मुक्त नहीं हो पाये थे । इलाहाबाद में जब जीवन संघर्षों में ही रत था तब कलकत्ता के फिल्म कार्पोरेशन आफ इंण्डिया से निमंत्रण पाकर कलकत्ता चले गए । कलकत्ता के फिल्म कंपनी में ढाई सौ रुपये महिना - तनख्वाह मिलता था । उन दिनों ढाई सौ रुपये का मूल्य आज के ढाईहजार के समकक्ष पडता था । परंतु मुश्किल से एक सालतक वहाँ रह पाये । आखिर थी तो वह नौकरी -

---

१ भगवतीचरण वर्मा - मेरी रचना प्रक्रिया - एक निबंध अध्येय - पृ. १६ (अ)

और नौकरी करना वर्माजी की प्रवृत्ति नहीं थी। उन्हीं के शब्दों में `सन १९३७ में परिस्थितियोंने मुझे अपने प्रदेश से उखाड दिया, कलकत्ता के फिल्म कार्पोरेशन आफ इण्डिया में मुझे कहानी एवं संवाद लेखक की नौकरी मिल गयी। इलाहाबाद के बेकारी के संघर्षों से मुझे त्राण मिला। मुश्किल से एक साल में उस नौकरीपर रह सका। मैं कह चुका हूँ कि, मैं नौकरी करने को बना ही नहीं हूँ, अहम्मन्यता की सीमा तक पहुँचनेवाला इतना सबल अहम् मिला है मुझे।`[१] तो कलकत्तावाली नौकरी छोडकर वापस इलाहाबाद लौट आए। मात्र एक वर्ष के अवधी में ही उनके अनगनित संपर्क बने थे, मानसिक रुपसे वे कलकत्ता निवासी बन गये थे। आर्थिक संघर्ष बराबर बना रहा था। उनके आर्थिक संघर्ष देखकर लीडर प्रेस के भारती भण्डार की देखभाल करनेवाले तथा स्वंय एक सफल कहानी लेखक पं. वाचस्पति पाठक ने कहा `भगवतीबाबू आप गंभीरतापूर्वक उपन्यास लेखन का काम उठा लें, आपकी आर्थिक समस्याओंका निदान उपन्यास लेखन में है।`[२] उनकी बात मन में गांठकर ली और वर्माजी एक नवीन उपन्यास पर बैठ गए।

सन १९३९ ई.में त्रिपुरी कॉंग्रेस अधिवेशन में वर्माजी सम्मिलित हुए। और वहाँसे कलकत्ता चले गए। और वहाँ जाकर एक साप्ताहिक पत्र निकालना आरंभ कर दिया। उस पत्र का नाम था `विचार`। शुरु के दिनों में यह पत्र चमका जरुर पर वह जादा दिन तक चला नहीं। आर्थिक संघर्षों ने उन्हें उखाड दिया। `विचार` पत्र में `हमारी उलझन` स्तंभ में भगवतीबाबू ने अपने मानसिक द्वन्द्व का सजीव चित्रण किया था। जो बाद में हमारी उलझन पुस्तक रुप में प्रकाशित हुआ।

सन १९४० ई.में केदार शर्मा ने जो फिल्म निर्देशक थे - `चित्रलेखा`

---

१ भूमिका - सविनय और एक नाराज कविता - पृ.१३

२ भूमिका - सविनय और एक नाराज कविता - पृ.१४

उपन्यासपर फिल्म बनाना आरंभ किया । इसी वर्ष वर्माजी काशी के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में तरुण साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुन लिये गये । और इसी वर्ष उनका ` मानव ` नामक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुआ ।

सन १९४२ ई.में वे बंबई चले आये । क्योंकि इस समय बाम्बे टाकिज में कहानी और संवाद लेखक की कमी थी । और ` चित्रलेखा ` उपन्यास पर फिल्म बनने के कारण वर्माजी का नाम हर फिल्मवाले को मालूम हो गया था । अत: बाम्बे टॉकिज में उन्हें सीनेरियो लेखक के रुपमें बुला लिया गया । सन १९४२ में जब की देशव्यापी ` भारत छोडो ` का नारा बुलंद हो उठा था । फलस्वरुप सन १९४७ ई.में देश स्वतंत्र हुआ । परंतु इस महान स्वतंत्रता-आन्दोलन में भगवतीबाबू सक्रिय योगदान नहीं दे पाये । परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी । उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार करते हुए लिखा है " मैंने ` स्वतंत्रता - संग्राम ` में कोई भाग नहीं लिया । राजनीतिक क्षेत्र से मैं हमेशा ही अलग रहा हूँ । फिर पारिवारिक परिस्थिति भी ऐसी नहीं थी, कि मैं जेल जाता और बाम्बे टाकिज में एक तरह से जमकर साहित्यिक सृजन में लग गया । "[१] इसी बीच उन्होंने अपना महत्वपूर्ण उपन्यास ` टेढे मेढे रास्ते ` पूरा करके सन १९४६ ई.में प्रकाशित किया । यहीं ` भूले बिसरे चित्र ` का आरंभ भी उन्होंने किया था । जो आगे चलकर सन १९५९ में प्रकाशित भी हुआ । सन १९४२ ई. से लेकर सन १९४७ ई.तक वे बंबई फिल्म दुनिया में रहे । उसके बाद सन १९४८ ई. में दैनिक पत्र ` नवजीवन ` के प्रधान संपादक बनकर लखनऊ चले आए । लेकिन यहाँ भी जादा दिन नहीं रह सके । किसी कारणवश सन १९४९ में संपादक पद का त्यागपत्र दे दिया । इसी वर्ष बंबई के फिल्मी जीवन के अनुभवों के आधारपर ` आखरी दाँव ` उपन्यास लिखा । और इन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश के समाजवादी जमींदारी उन्मूलन के प्रसार कार्य में लग गए । मात्र आर्थिक संघर्ष बराबर चल ही रहा था । उसमें सुधार नहीं था । क्योंकि अर्थार्जन का कोई ठोस साधन न था ।

---

१ सविनय और एक नाराज कविता - पृ.सं.१६

सन १९५० ई.में भगवतीबाबू आकाशवाणी में हिन्दी सलाहकार के रुप में नियुक्त किये गए। हिन्दी प्रचार और प्रसार में रेडियो का प्रमुख योगदान होगा, इसी भावना से ऑल इण्डिया रेडियों में, हिन्दी सलाहकारों की नियुक्ति हुई थी। लखनऊ आकाशवाणी से सन १९५३ ई.में उन्हें दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया। सुगम-संगीत की स्थापना के हेतु वर्माजी को दिल्ली बुला लिया गया था । सन १९५६ ई.के अंत तक दिल्ली से वे फिर लखनऊ वापस आ गये। इन्हीं दिनों 'त्रिपथगा ' (काव्यरुपक), 'बुझता-दीपक ',' रुपये तुम्हें खा गया ',' वासवदत्ता ' (पटकथा), इ. का सृजन किया। सन १९५७ ई.में फिर वर्माजी ने 'ऑल इण्डिया रेडियो ' की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। नौकरी से मुक्त होकर वर्माजीने अपने को साहित्य सृजन में लगा दिया। 'अपने खिलौने ' 'थके पाँव ' छप रहे थे और 'भूले बिखरे चित्र ', लिखना जारी ही था।

यहाँ तक आते आते वर्माजी के आर्थिक संघर्षों की तीव्रता जाती रही। क्योंकि रायल्टी बढती जा रही थी। अब वे मात्र अपने उपन्यासोंपर मिलनेवाले रायल्टीपर ही अवलम्बित थे। वर्माजीने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है " मैं इस सम्बन्ध में भाग्यशाली था कि 'चित्रलेखा ' मेरी भाग्यलक्ष्मी साबित हुई और उसकी सफलता के बाद मेरे उपन्यासोंकी बिक्री लगातार बढती गई। सन १९५७ में मेरे उपन्यासों की रायल्टी इतनी अधिक हो गयी थी, कि मैं आजीविका के लिए मात्र अपने उपन्यासोंपर अवलम्बित हो गया और मैंने रेडियो की एक मोटी तनख्वाह की नौकरी छोड दी। एक पुत्री और चार पुत्रों के बहुत बडे परिवार को साथ लेकर मैं आराम का जीवन व्यतीत करने लगा ।" १

सन १९६० ई.के बाद तो रास्ता साफ साफ था। वर्माजी लखनऊ, महानगर में 'चित्रलेखा ' भवन का निर्माण कर स्थायी रुपमें रहने लगे। लखनऊ

---

१ अतीत के गर्त से - पृ.सं.४२

में कई साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओंका संगठन कर अपनी मित्र मंडली में हंसी-मजाक की जींदगी बिताते रहे। उनके मित्र मण्डली में सुविख्यात हिन्दी साहित्यकार - अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, दिनदयाल गुप्त, ज्ञानचंद्र जैन आदि के नाम प्रमुख हैं। मात्र इसके साथ ही साथ अखंड रूपसे साहित्य सृजन में भी वे विमग्न थे। इसी बीच स्वतंत्र भारत की परवर्तित सामाजिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि तथा जमींदारी उन्मूलन से प्राप्त स्वानुभूतों के आधारपर वर्माजीने `सामर्थ्य और सीमा` उपन्यास लिखा। इससे पूर्व सन १९५९ ई. में `भूले बिसरे चित्र` जो वर्माजी का बहुचर्चित बृहत उपन्यास है, जिसे साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है - प्रकाशित हुआ। सन १९६० ई.में भारत विभाजन की शरणागती समस्यापर लिखा गया `वह फिर नहीं आयी` उपन्यास प्रकाशित हुआ। सन १९६४ ई.में `रेखा` नामक मनोवैज्ञानिक उपन्यास तो सन १९६८ ई.में दुसरा बृहत उपन्यास `सीधी सच्ची बातें` का प्रकाशन हुआ। सन १९७० ई.में `सबहिं नचावत राम गुसाईं` तथा तिसरा बृहत उपन्यास `प्रश्न और मरीचिका` सन १९७३ ई.में प्रकाशित हुए। इसी दरम्यान भारत सरकारने भगवतीबाबू को `पद्मभूषण` की उपाधि से सम्मानित किया। तो उत्तरप्रदेश सरकार ने `हिन्दी समिति का अध्यक्ष` बनाया। सन १९७६ ई.में `मेरी कहानियाँ`, `मोर्चाबन्दी`, `मेरी कविता`, आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई। सन १९७८ ई.में मेरे नाटक - वसियत और सन १९७९ ई.में `अतीत के गर्त` से (संस्मरण) तो सन १९८१ ई.में `धुम्पल` (आत्मचरितात्मक उपन्यास) तथा १९८२ ई.में `चाणक्य` (ऐतिहासिक उपन्यास) आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई।

इस प्रकार सन १९५७ से १९८१ ई.तक तेईस चौबीस वर्षोंके लम्बे काल में वर्माजीने जो कुछ लिखा वह मेहनत के साथ। उम्र ७८ वर्ष की हो चुकी थी, फिर भी ताजगी के साथ साहित्य सृजन का कार्य जारी रहा था। अन्तीम दिनों में उन्होंने `सविनय और एक नाराज कविता` नामक खण्डकाव्य लिखा। जिसका प्रकाशन सन १९८४ ई.में हुआ। इस काव्य पुस्तिका की भूमिका में उन्होंने लिखा

है " १९५७ से १९८० - तेईस वर्षों का लम्बा काल । इस बीच मैं ने जो कुछ लिखा बड़ी मेहनत के साथ, उससे मुझे संतोष है । अब लगता है कि एक थकावट सी भरती जा रही है मुझमें उम्र भी तो ७८ वर्ष की हो गयी है, लेकिन जब तक हाथ-पैर सही सलामत है, दिमाग ठीक तौर से काम करता है, तब तक लिखते जाना है । " १

व्यक्तित्व --

" हम दिवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले ,
मस्ती का आलम साथ चला ,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले । "

भगवतीबाबू का नाम याद आते ही उनकी इस सुप्रसिध्द कविता के साथ ही उनका व्यक्तिगत जीवन भी सामने उभर आता है । क्योंकि यह कविता उनके व्यक्तिगत जीवन दर्शन से निकली थी । हिन्दी के प्रसिध्द कवि हरिवंशराय बच्चन का इस सम्बन्ध में कथन है " कुछ ऐसा ही था, उनका व्यक्तिगत जीवन भी, मस्ती और फाक्कडपन ' के बगैर भगवतीबाबू की कल्पना ही असंभव है । " २ उनके बाह्य आकर्षक व्यक्तित्व को लेकर डा. ब्रजनाथ प्रसाद शुक्ल ने लिखा है " मध्यमकर का स्वस्थ्य, सुडौल, गठा हुआ, साँवला चुस्तबदन, मुखपर मधुर मुसकान और मन में असीम आत्मविश्वास, आँखोंमें एक प्रकार का विषाक्त सम्मोहन तथा दिल में धधकता हुआ अंगारा, जिसपर इन्द्रधनु खेल रहा हो - यह है चित्रलेखा के वर्माजी । अपनी मस्ती में विशाल हस्ती को छिपाए हुए उनका महान व्यक्तित्व मस्ती के उस आलम में लेना तो क्या, अपने प्यार से सिंचित भावनाओं से ओतप्रोत अमृत अवश्य बाँटना चाहता है .... साफ धुला खद्दर का कुर्ता पाजामा पहने,

---

१ सबिनय और एक नाराज कविता - पृ.सं.२१
२ धर्मयुग - १८ से २४ अक्तूबर १९८१ - पृ.३५

सिरपर तिरछी टोपी दिये, मुँह में पान दबाए, अहिस्ता - अहिस्ता जब किसी समाज में वर्माजी पहुच जाते हैं तो उनके आस-पास हँसी और उल्लास की झाडी-सी लग जाती है।"[१] बहुमुखी प्रतिभा के धनी वर्माजी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही आकर्षक था। कमलापति त्रिपाठी के शब्दों में "मुझे तो उनकी सभी बाते अच्छी लगती हैं, सबसे ज्यादा उनका पानखाना, उनकी अचकन, चौडी मोहरी का पाजामा, उनकी चाल (मानों लखनऊ नाप लेंगे) उनके लिखने की शैली।"[२] अमृतलाल नागर ने तो कई स्थलोंपर वर्माजी के स्वभाव की मस्ती तथा फक्कडपन की चर्चा की है। वर्माजी की प्रखर प्रतिभा व तेजस्वी व्यक्तित्व को लेकर वे लिखते हैं " भगवतीबाबू यदि कवि न हुए होते तो आज वे आई.सी.एस.अफसर भी हो सकते और राजनीतिक नेता-मंत्री भी। आरंभ में यदि अनुकूल स्थितियाँ मिल जाती तो, शायद उद्योगपति भी।"[३]

भगवतीबाबू का समस्त जीवन आर्थिक संघर्षो से ग्रस्त रहा था। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो गया था और बीच में ही पत्नि छोड चल बसी थी। मानों उनके जीवन में पहाडसाही टूट पडा था। किन्तु इन विषम परिस्थितीयोंमें भी वर्माजी हिम्मत नहीं हारे। मुसिबतों के साथ डटकर सामना करते रहे। 'हमारी उलझन' में वे लिखते हैं " मुझपर मुसिबते पडी, ऐसी मुसिबतें पडी, जिनकी कल्पना करने से ही हृदय काँप उठता था। लेकिन जब वे मुसीबतें सिरपर आई, तब मैंने अनुभव किया, कि वे मुसीबतें कुछ भी नहीं है, नित्य ही घटित होनेवाली साधारण घटनाओंकी भाँति वे मुसीबतें आई और चली गई। लोगोंका कहना है कि मुसीबतों के समय खुदा याद आता है, पर मैं यकीन दिलाता हूँ कि इन मुसीबतों के समय भी मैंने ईश्वर के विषय में कुछ नहीं सोचा।" भगवतीबाबू में जीवन की प्रति एक जबरदस्त जिजीविषा थी। कवि हरिवंशराय बच्चन के कथनानुसार -" उनके भीतर पूरे जीवन मैंने एक जबरदस्त जिजीविषा महसूस की,

---

१ भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना - पृ.सं.२७

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १५ सितम्बर १९६३ - पृ.सं.४५

३ - वही -

हालांकि वे नियतिवादी थे, लेकिन व्यक्तिगत जीवन में उनकी कर्मठता, जिजीविषा और युयुत्सा को देखकर आश्चर्य होता था।" १

भगवतीबाबू ने अपने जीवन में सिध्दान्त के लिए कभी झुकना पसंद नहीं किया। शायद इसीलिए हर जगह उन्हें संघर्ष करना पडा। मात्र कदापि वे संघर्षसे विचलित नहीं हुए। समझौता करना भी उन्हें पसंद नहीं था। सिध्दान्तोंपर वे अटल रहते थे। चाहे कोई भी किंमत चुकाना क्यों न पडे। बडे से बडे प्रलोभन को भी ठुकराने का अजीब साहस उनके व्यक्तित्व में था। इस सम्बन्ध में एक घटना को यहाँ उद्धृत करना अनुचित नहीं होगा। जब वे प्रतापगढ में वकालत करते थे, तब की बात है। 'चित्रलेखा' के कारण उन्हें ख्याति तो मिल चुकी थी, वहीं उनका परिचय मद्री राजासाहब से हुआ। प्रकाशन योजना बनाकर राजासाहब ने भगवतीबाबू को अपने साथ कर लिया। वहाँ तो सारा आराम ही आराम था। परंतु प्रकाशन कार्य कहीं आरंभ होते नजर नहीं आ रहा था, तब भगवतीबाबूने राजासाहब से पूछा "काम क्या है?" राजासाहब ने कहा - "काम धाम क्या है? यहीं रहिए और साहित्य सेवा कीजिए। इसके बाद दुसरे ही दिन भगवती बाबू ने अपना बिस्तर समेटकर चलते बने। मुक्त में मिलनेवाला आराम। सुविधा उनके स्वाभीमानी स्वभाव में बैठता नहीं था। उनके स्वाभीमानी स्वभाव के सम्बन्ध में कवि बच्चन का कहना है "वे किसी को अपने से बडा नहीं समझते थे, कहते भी थे, 'मैं सबसे बडा हूँ।' लेकिन इस स्वाभीमान का दुसरा पक्ष भी उनके व्यक्तित्त्व में था। वे किसी को अपने से छोटा या तुच्छ भी नहीं समझते, हीनता और श्रेष्ठता दोनों ग्रंथियोंसे मुक्त ऐसे मर्यादित व्यक्तित्व कम ही मिलते हैं।" २ साथ ही वर्माजी अपनी प्रशंसा से लापरवाह तथा आलोचना से बेफिक्र रहनेवाले व्यक्ति थे। स्पष्टवादिता उनके स्वभाव की विशेषता थी। उन्होंने स्वंय लिखा है "यह तो सत्य नहीं है कि प्रशंसा

---

१ धर्मयुग - १८ से २४ अक्तुबर १९८१ - पृ.३५

२ -- वही --

मुझे बुरी लगती है, लेकिन प्रशंसा की भूख मुझमें नहीं और निंदा से मुझे चोट अवश्य लगती है, लेकिन निंदा का भय मुझमें नहीं । "[१]

स्वाभीमानी और अक्खड मिजाजी के बावजूद उनके व्यक्तित्व में मानवीयता और स्नेहमयता का भी दर्शन होता है । अपनेसे छोटों को भगवतीजीका अगाध स्नेह मिलता था । वे दुसरे के स्वाभीमान की रक्षा भी करते थे, और अपनी सीमा से बाहर जाकर सहाय्यता भी । इस स्नेह के पात्र कवि हरिवंशराय बच्चन तथा ' नवीन ' जो रहे हैं । उन्हें संगीतका भी बडा शौक था, स्वंय उनका कथन है " बचपन में मुझे संगीत का शौक था, मेरा कण्ठ सुरीला था और मुझे स्वर तथा लय का प्राकृतिक बोध था । ... अगर मुझे संगीतज्ज्ञ होने की परिस्थितियाँ मिली होती, तो शायद मैं संगीतकार हो गया होता । "[२]

बैठकबाजी और किस्से गोईता भगवतीबाबू का स्वभाव धर्म ही था । किस्से गोईता में अभिनय का साथ रहता था । कविश्री बच्चन के शब्दोंमें " दोस्तों के बीच बाते करते करते ही वे अपनी कहानियाँ, उपन्यासों के प्लॉट बना लेते थे । और झट उनके मुँहसे निकलता -। बहुत पॉवरफुल प्लॉट मेरे दिमाग में आया है " , इसके बाद एक एक पृष्ठ खुलते जा रहे हो, ऐसा वे सुनाना शुरु कर देते । अभिनय के साथ किस्सेगोई का वह अंदाज हमें घंटो बांधे रहता । "[३]

राजनीति की ओर भी उनका झुकाव रहा था । यद्यपि पारिवारिक समस्या के कारण वे कोई सक्रिय योगदान नहीं दे पाये और जेल वगैरह तो भी नहीं गये । मात्र सिर पर गांधी टोपी तथा खद्दर के कपडे जरुर पहनते थे । सन १९४२ के स्वंतत्रता आन्दोलनों के दिनों में डॉ. केसकर को (जो बाद में केंद्रिय सूचना मंत्री बने थे), अपने यहाँ छिपा रखे थे ।

---

१ सारिका - जनवरी १९६३ - पृ.९
२ सविनय और एक नाराज कविता - पृ.९
३ धर्मयुग - १८ से २४ अक्तुबर १९८१ - पृ.३७

भगवती प्रारंभ में कविता लेखन करते रहे, कवि रुपमें ख्याति प्राप्त करने के उपरान्त, फिर उपन्यासकार के रुप में विख्यात हुए। उन्होंने कई उपन्यास तथा कहानियाँ लिखी। परंतु सबसे अधिक ख्याति 'चित्रलेखा' से ही मिली। 'चित्रलेखा' को लेकर वर्माजीपर कई लोगों ने यह आरोप किया है कि यह कृति अनातोले (फ्रांस) की 'थैया' का अनुवाद है। जो झूठ है। इस सम्बन्ध में कविश्री बच्चनजी का कथन है -- "मैंने दोनों उपन्यासोंको पढा है, मुझे दोनों में ऐसा कोई साम्य नजर नहीं आया। एक इतने बडे दार्शनिक सिध्दान्तको पूर्णत: भारतीय परिवेश में गूँथकर, उसे इतना सरल बना देना भगवतीबाबू जैसा किस्सेगो ही कर सकता था।" [१]

जैसा विदित किया जा चुका है कि भगवतीबाबू स्वभावसे एकदम फक्कड किस्म के आदमी थे। किसी एक जगह टिकना उनके लिए असंभव था। अस्तित्व का संघर्ष और न झुकने की प्रवृत्ति के कारण वे हमेशा स्थानान्तरित होते रहे। इलाहाबाद से कानपुर, कानपुर से हमीरपुर, हमीरपुर से प्रतापगढ फिर इलाहाबाद, फिर कलकत्ता, कलकत्ता से बंबई फिर बंबई की फिल्मी दुनियासे दिल्ली - लखनऊ। सन १९५७ के बाद लखनऊ को ही स्थायी रुपसे चुना। यही जीवनातंक तक 'चित्रलेखा' भवन में रहे। भगवतीबाबू की जींदगी को स्थायी रुप में देनेमें उनकी दुसरी पत्नी नंदिता का बडा हाथ रहा। नंदिता उनके जीवन में तब आयी थी जब उनकी पहली पत्नी उमा चारपुत्र और एक पुत्री को छोडकर चल बसी। नंदिताजी ने सबकोही बडा प्यार और ममता दी।

इस प्रकार भगवतीबाबूजी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा था - अक्खड- स्वामीमानी, फक्कड और सिध्दान्तवादी संगीत के शैाकीन, प्रशंसा से लापरवाह तथा आलोचना से बेफिकर, साहसी, बैठकबाज और किस्सेगोई, भरापुरा बहु-आयामी और जीवंत व्यक्तित्व था उनका।

---

१ धर्मयुग - १८ से २४ अक्तुबर १९८१ - पृ.३७

महानिर्वाण —

एक महान साहित्यकार को जितनी उम्र चाहिए उतनी लम्बी उम्र भगवतीबाबूजी को मिली थी। करीबन ८०-८१ वर्षों की लम्बी आयु उन्हें प्राप्त हुई थी। जब तक हाथ पैर सहीसलामत थे और दिमाग ठीक तौर से काम करता रहा, तबतक कलम हाथसे छूट नहीं पाया। जब जिंदा रहे - तब तक दुसरों के प्रति संवेदना, सहानुभूति और स्नेह का अबाध दान देते रहे। मात्र जींदगी के अन्तीम दिनों में वे गले के कैन्सर से पिडित रहे थे। सितम्बर ८१ के आरंभ में उन्हें ऑल इंण्डिआ इंस्टिटयूट ऑफ मेडिकल साइंसेज में भरती करवाया था। कुछ राहत जरुर मिली थी। अस्पताल से वे घर आये थे। वहीं बाथरुम से निकलते वक्त गिर पडे और अचानक पडे दिल के दौरे ने उन्हें हमेशा के लिए हम से अलग कर दिया। वह दिन था, ५ अक्तूबर १९८१। वे अपने मस्ती में धूल उडाते चले गये।

अन्त में हम संक्षेप में इतनाही कह सकते हैं कि भगवतीबाबू का पूरा जीवन वृत्तांत देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि हिन्दी के वे एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उनका अक्खड स्वाभीमानी,बहुआयामी व्यक्तित्व, जींदगी भर संघर्षरत रहा,कहीं झुका नहीं। कहीं समझौता भी नहीं किया, अपने सिध्दान्तोंपर वे अटल रहें। आर्थिक संघर्षों के साथ ही पारिवारिक मुसीबतों से सामना करते हुए अपने निश्चित लक्ष्य को प्राप्त किया। संघर्षरत-जींदगी जीते हुए भी, साहित्य-सृजन में कहीं खण्ड नहीं आने दिया। सच्चे अर्थों में वे कलम के सिपाही थे। हिन्दी-साहित्य जगत्‌में भगवतीबाबू ने कवि के रुप में प्रवेश किया, ख्याति भी पायी। तदुनंतर वे कहानीकार, उपन्यासकार,नाटककार,संपादक, फिल्मी कहानी-संवाद लेखक ,आकाशवाणी में

प्रोड्युसर-सबकुछ थे। मात्र उनकी सबसे अधिक ख्याति उपन्यासकार के रूप में ही रही। प्रेमचंदोत्तर औपन्यासिक धारा में भगवतीबाबू के जीवन-व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा किये बिना वह अध्ययन अधुरा ही रह जायेगा। भगवतीबाबू हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठित उपन्यासकार थे।

••